International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 736-738

गृहारम्भ सम्बन्धी प्रमुख तथ्यों का अवलोकन

पुरुषोत्तम शर्मा
Teacher in Government Middle School Dramani, Kathua, Jammu and Kashmir, India

प्रस्तावना

अपनी सुरक्षा और सुख प्राप्ति का भाव सभी प्राणियों में स्वभाविक रूप से पाया जाता है। निवास स्थान सुख प्राप्ति और स्व सुरक्षा का सर्वोत्तम साधन है। मानव जाति सभी जीवों में सर्वश्रेष्ठ जाति है अतः इसका निवास स्थान भी सर्वश्रेष्ठ और निरापद होना अनिवार्य है अन्य प्राणी तो केवल अपने परिश्रम से ही अपना निवास स्थान बना लेते हैं परन्तु मनुष्य को देश, काल और परिस्थिति के अनुसार ही निवास स्थान अर्थात् गृह बनाना पड़ता है। प्रायः प्रत्येक मनुष्य ऐसे गृह में निवास करना चाहता है, जिसमें रहकर उसे चतुर्दिक् उन्नति, सुख–शान्ति एवं वैभव तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति हो सके। गृह तो विविध प्रकार के होते हैं, परन्तु सामान्य मानव जिसमें रहकर चारों आश्रमों यथा – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास के लोगों का परिपालन करता है, वह गृहस्थ आश्रम ही है इसलिए वास्तुरत्नाकर के विवरणानुसार पुरुषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि के लिए गृहस्थ को एक शुभ घर की सर्वाधिक आवश्यकता होती है क्योंकि गृहस्थ के सभी क्रिया–कलाप स्वकीय गृह के बिना सिद्ध नहीं होते –

''गृहस्थस्य क्रिया सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना।
यतस्तस्माद् गृहारम्भकर्म चात्राभिधीयते।।''

राजवल्लभमण्डनम् में गृह की उपयोगिता का वर्णन मिलता है जिसमें कहा गया है कि उत्तम भवन स्त्री एवं पुत्रादि भोगों तथा सुखों का हेतु; धर्म, अर्थ एवं काम को प्रदान करने वाला सभी प्राणियों का निवास स्थल; शीत, वृष्टि, आतप एवं शत्रुओं से रक्षा करने वाला मांगलिक एवं धार्मिक कृत्यों का स्थान एवं सुख का आगार होता है। वापी एवं कुएँ का सुख तथा मन्दिर का पुण्य भी आवास से ही प्राप्त होता है इसलिए पण्डित और देवता सर्वप्रथम गृह की आवश्यकता अनुभव करते हैं यथा –

''स्त्रीपुत्रादि भागसौख्यजनकं धर्मार्थकामप्रदम्
जन्तुनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।
वापी देव गृहादि पुण्यमखिलं गेहात् समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।।''

संसार में घर सभी प्राणियों के लिए उपयोगि होने के कारण मानव को अपना गृह वास्तुशास्त्रीय विधान के अनुसार निर्मित करना चाहिए। गृह निर्माण से पूर्व मनुष्य को किसी वास्तु विशेषज्ञ से गृह निर्माण हेतु चयनित भूमि का परीक्षण करवाना चाहिए क्योंकि चयनित स्थल में किसी भी प्रकार के वास्तुशास्त्रीय दृष्टि के दोष से बचा जा सके। मत्स्यपुराण में सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा कर पश्चात् वास्तु की कल्पना का निर्देश किया गया है यथा – पूर्वं भूमिं परीक्षेत् पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत्।[1] भूमि परीक्षण में मानव को हस्त प्रमाण से खोदे हुए गड्ढे को पानी से भरकर सौ कदम दूर जाकर वापस लौट आयें। वापसी पर यदि गड्ढे में उतना ही पानी मिले तो उस भूमि को सार्वकामिकी अर्थात् सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाली उत्तम कहा गया है तथा यदि पानी कम हो जाए तो उसे मध्यम श्रेणी की भूमि कहते हैं यदि उससे भी कम हो जाए तो उस भूमि को अधम भूमि कहा गया है। उत्तम भूमि निवास स्थान के लिए सर्वश्रेष्ठ है। जैसा कि समराङ्गणसूत्रधार में कहा गया है –

भृत्वादिभः खातमापूर्णे तस्मिन् पदशतं व्रजेत्।
तावच्चेदागमेऽम्भः स्यात् तदा भूः सार्वकामिकी।।
मध्यमात्र प्रहीणे स्यात् ततो हीनतरऽधमा।[2]

भू परीक्षणान्तर भूमि का दिक् शोधन करना परमावश्यक है। प्रासाद, गृह, द्वार एवं कुण्ड इनके निमार्ण में विशेष रूप से दिक् साधन करना चाहिए क्योंकि दिशा के सही ज्ञान के बिना गृह निर्माण करने से कुल का नाश होता है। सर्वप्रथम समतल भूमि पर ध्रुवाभिमुख शुल्वसूत्र रूप रेखा के उत्तर मत्स्य बनायें एवं उस मत्स्य के मुख–पुच्छगत रेखा पूर्ण एवं पश्चिम होगी तथा मत्स्य मुखपुच्छगत रेखा के मध्यम बिन्दु के कृत लम्ब रेखा दक्षिणोत्तर रेखा होगी।[3] चयनित भूमि का शल्य शोधन करना भी वास्तुशास्त्रीय विधान माना गया है कि हवन काल अथवा प्रश्न काल में गृह का स्वामी जिस अंग को खुजलावे वास्तु पुरुष के उस अंग स्थान में शल्य जानना चाहिए अथवा जिस देवता की आहुति देने के समय अशुभ निमित्त (शकुन–छींक–चिल्लाना, पादना या अशुभ शब्द श्रवण) हो या अग्नि में विकार (विस्फुलिङ्ग शब्द के साथ दुर्गन्ध) उत्पन्न हो तो उस देवता के स्थान में शल्य जानना चाहिए।[4] गृहारम्भ में वास्तुपुरुष की स्थापना करना अति महत्त्वपूर्ण है। वास्तुपुरुष की परिकल्पना सम्पूर्ण निर्धारित एवं विदिशाएँ निर्धारित करने के उपरान्त ही इस वास्तुपुरुष का चित्रण किया जाता है। जिसका सिर ईशान में, पाँव नैऋत्य में तथा दोनों हाथ आग्नेय एवं वायव्य में स्थापित होते हैं। यह परिकल्पना औंधे मुहँ लेटी हुई स्थिति में की जाती है। इसके साथ ही सम्पूर्ण निर्धारित भू–क्षेत्र का वर्गों में विभाजन किया जाता है। प्रत्येक वर्ग को वास्तु पद संज्ञा से व्यवहृत किया जाता है ये वर्ग वास्तु के अनुरूप संख्या में 64, 81 अथवा 100 इत्यादि हो सकते हैं। प्रत्येक वर्ग का एक–एक अधिकारी देवता निश्चित होता है। सभी वर्गों के अधिकारी देवों को मिलाकर वास्तु देवता के परिकर की कल्पना की जाती है। किस वर्ग में कौन सा कार्य अपेक्षित है अथवा नहीं है इसका निर्देश इसके पश्चात् किया जाता है। वास्तुपुरुष के मर्म स्थान में किसी भी प्रकार का निर्माण कार्य नहीं करना चाहिए। मर्म स्थान का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मर्म स्थान पर भित्ति निर्माण, स्तम्भ अथवा खूंटी बनाकर ऐसी रचना करें जिससे स्थान दबे नहीं, यदि मर्म दबता हो तो गृहपति के धन, वैभव आदि का नाश होता है।[5] हमारे शास्त्रों में प्रत्येक कार्य को यथोचित मुहूर्त पर आरम्भ करने का निर्देश मिलता है।

गृहारम्भ भी उचित मुहूर्त के अनुसार होना चाहिए। शुक्लपक्ष में गृहारम्भ करने से तस्कर का भय होता है। पूर्णिमा से कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि तक पूर्व, कृष्णपक्ष की नवमी में चतुर्दशी तक उत्तर, अमावस्या से शुक्लपक्ष की अष्टमी तक पश्चिम और शुक्ल नवमी से चतुर्दशी तक गृहारम्भ निषिद्ध है। 2,3,5,7,10,11,12,13,15 ये तिथियाँ गृहारम्भ के लिए शुभ हैं। गृहारम्भ में गुरु, शुक्र का उदय, शुक्लपक्ष व दिन शुभ हैं किन्तु रात्रि में गृहारम्भ सदा निषिद्ध है।[5] मुहूर्त देखकर शिलान्यास करना आवश्यक है। कई लोग खात, खनन, भूमि पूजन को ही शिलान्यास के लिए प्रयुक्त की जाने वाली चार शिलाओं के नाम नन्दा, भद्रा, जया एवं पूर्णा तथा वाशिष्ठी, काश्यपी, भार्गवी, अंगिरसी क्रमशः उनकी संज्ञाएँ कही गई है। जैसे समराङ्गणसूत्रधार में कहा है–

''नन्दाभद्राजयापूर्णाश्चतस्रः स्युरिमाः शिलाः।
वाशिष्ठी काश्यपी तद्वत् भार्गव्याङ्गिरसीति ताः।।[7]

गृहारम्भ अथवा गृह प्रवेश के सुअवसर पर वास्तुचक्र का निर्माण करके विधिवत् चक्र में अधिष्ठातृ देवताओं का पूजन किया जाना आवश्यक होता है, यदि ऐसा न किया जाए तो गृह स्वामी के लिए अनिष्ट होता है। अतएव हित–चिंतन के उद्देश्य हेतु वास्तु पूजन अवश्य करवाना चाहिए। इस विषय में नारदपुराण में कहा गया है कि जो मनुष्य गृहारम्भ के अवसर पर वास्तु पूजन करता है वह आरोग्य, पुत्र, धन एवं धान्य प्राप्त करके सुख भोगता है तथा जो नहीं करता वह रोगग्रस्त क्लेश एवं नाना प्रकार संकटों से ग्रसित रहता है।[8] वास्तुशास्त्र में विभिन्न प्रकार के भवनों जैसे जनभवन, राजभवन तथा देवभवन इत्यादि। जनभवन साधारण मनुष्य के भवनों को कहा गया है, राजभवन राजा का निवास स्थान एवं देव भवन के अन्तर्गत मन्दिर आश्रम आते हैं। इसके साथ घर का मान अर्थात् ऊँचाई–चौड़ाई का भी विचार वास्तुशास्त्रीय तथ्यों के आधार पर किया जाना अनिवार्य है। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में चतुर्विध वर्णों के आधार पर गृह के प्रमाण का उल्लेख किया गया है। इनके गृहों का अधिकतम विस्तार 32 हाथ तथा न्यूनतम विस्तार 16 हाथ कहा गया है।[9] मनुष्य को जिस स्थान पर घर बनाना है उस स्थान की अनुकूलता पर विचार अवश्य करना चाहिए क्योंकि मनुष्य घर में सर्व सौख्य की कामना करता है। ग्राम की अनुकूलता का ज्योतिष के आधार पर विचार करते हुए कहा गया है कि गृह स्वामी की राशि की अनुकूलता ग्राम की राशि से अर्थात् ग्राम के नाम के पहले अक्षर से जो राशि निकलती है उसको गृहस्वामी की राशि से दूसरी, पाँचवी, नवमीं, दसवीं तथा ग्यारहवीं होना चाहिए। जैसा कि वास्तु सर्वस्व में कहा गया है –

प्रथमे सप्तमे ग्रामे वैरं हानिस्त्रिषष्ठगे।
तुर्याष्टकद्वादशे रोगः शेषस्थाने शुभं भवेत्।।[10]

नव–निर्मित भवन के द्वार की स्थिति किस प्रकार की होनी चाहिए क्योंकि द्वार गृह का प्रमुख भाग होता है। द्वार का निश्चित माप होना चाहिए। गृह का द्वार उचित दिशा में होना चाहिए क्योंकि अनुचित दिशा में होने पर वह अनिष्टकारक होता है। आजकल लोग विभिन्न प्रकार के द्वारों का गृह में निर्माण करवाते हैं फिर भी घर के द्वार को अच्छी लकड़ी से निर्मित करना चाहिए। दो पल्लुओं का द्वार शुभ–कारक माना गया है। द्वार का प्रमाण गृह द्वार की ऊँचाई को अंगुलों में हस्तात्मक बना लें। जितने हाथ हों, उन्हें अंगुल मानें। इतने ही अंगुल मोटाई द्वार की चौखट की खड़ी पट्टियों या शाखाओं अथवा आजू बाजू के काष्ठ की होनी चाहिए। मोटाई को डेढ़ गुणा करने से देहली व ऊपर की चौड़ाई वाली द्वार शाखा अर्थात् पैर व सिर की ओर की दोनों शाखाओं की मोटाई होनी चाहिए।[11] द्वार में किसी भी प्रकार का वेध नहीं होना चाहिए। घर के मुख द्वार के समक्ष राजमार्ग, वृक्ष, दूसरे घर का कोना, कूप, स्तम्भ कीचड़ या गन्दी नाली, देवता तथा ब्रह्मवेध (ब्रह्म अथवा किसी देवतुल्य मनुष्य की प्रतिमा) ये सब अशुभ होते हैं। गृहद्वार की ऊँचाई से द्विगुणित भूमि छोड़कर यदि यह वेध स्थित हो तो दोष नहीं होता है।[12] गृहारम्भ के समय पर गृह स्वामी को चाहिए कि वह भवन पर पड़ने वाली वृक्ष की छाया का विचार अवश्य कर लें क्योंकि भवन के ऊपर किसी त्याज्य वृक्ष की छाया अथवा किसी देवालय प्रासाद की छाया तो नहीं पड़ रही है। यदि प्रहर के प्रथम भाग में भवन पर किसी वृक्ष की छाया अथवा देव–प्रासाद आदि के ध्वजाओं की छाया पड़ती हो तो वह स्थान निवास के लिए अनुकूल नहीं होता है, इसका परित्याग किया जाना चाहिए, किन्तु उदयकाल एवं अस्तकाल की छाया दोष कारक नहीं होती है। नारदपुराण में गृह पर वृक्ष छाया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पाकड़, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा तथा कंटीलेदार एवं दूध वाले सभी वृक्ष पीपल, कपित्थ, अगस्त्य वृक्ष, सिन्धुवार और इमली आदि इन सभी वृक्षों को घर के समीप लगाना अप्रशस्त माना गया है। विशेष रूप में यदि घर के दक्षिण एवं पश्चिम भाग में ये सभी वृक्ष रोपे जाएँ तो धन आदि का नाश होता है।[13] गृह निर्माण में मनुष्य को किस प्रकार की काष्ठ का उपयोग करना चाहिए इसका भी उचित विचार करना चाहिए। काष्ठीय वृक्षों के सम्बन्ध में 'वास्तुसारमण्डन' में वर्णन करते हुए कहा गया है कि श्रीपर्णी (कायाफल) शीशम, टिम्बरु, चन्दन, अर्जुन, पन्नाग, रोहिणी, लोध्र तथा अन्य दूसरे प्रकार के वृक्षों के काष्ठ को उपयोग में लाया जा सकता है। यथा –

''श्रीपर्णी शिंशुपाधन्या तिन्दुकी चंदनार्जुनैः।
पन्नग रोहिणी लोध्र, सारा अन्यऽपि शोभनाः।''[14]

विश्वकर्मप्रकाश में भी इस विषय में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है कि देवदार, चन्दन, शमी, शिंशिपा, खदिर, शाल एवं शाल के ही सदृश विस्तृत अन्य वृक्षों के काष्ठ सभी जातियों के लिए प्रशस्त होते हैं तथा घर में एक जाति या दो–तीन प्रकार की जातियों के काष्ठ को उपयोग में लाया जा सकता है, इससे अधिक जाति के काष्ठ का उपयोग गृह निर्माण में नहीं करना चाहिए।[15] अतः उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि संसार में प्रत्येक मनुष्य को अपना घर वास्तुशास्त्र इत्यादि प्रमुख तथ्यों के अनुसार बनाना चाहिए क्योंकि वास्तुशास्त्रीय नियमों पर निर्मित गृह में सदा सुख, शान्ति, समृद्धि एवं ऐश्वर्य की कामना की जाती है। इसके अलावा वह गृह चिर स्थायी एवं चिर लक्ष्मी युक्त रहता है। वास्तव में कहा जाए तो आज के युग में जो प्रणालियाँ गृह निर्माण हेतु अपनाई जा रही हैं यह सब हमारे प्राचीन वास्तु ग्रन्थों में उल्लिखित मिलती हैं।

सन्दर्भ

1. मत्स्यपुराण 253/10
2. समराङ्गणसूत्रधार भवन निवेश 10/71-72
3. ध्रुवलम्बकरेखाया रेवान्ते सौम्ययाम्यहरितौ स्तः।
4. तन्मत्स्यपुच्छमुखतः पश्चिम पूर्वाभिधे विद्यात्।। वास्तुसार 3/7
5. कण्डूयते यदङ्ग गृहभर्त्तुर्यत्र वा ऽमराहुत्याम्।
6. अशुभं भवोन्निमित्तं विकृतेर्वाग्नेः सशल्यं तत्।। वृहत्संहिता 53/59
7. अपराजितपृच्छा 18/203
8. शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्।

9. पूर्णाद्यष्टमीं यावत्पूर्वास्यं वर्जयेद् गृहम्।
10. उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम्।
11. अमावस्याष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत्।।
12. नवम्यादौ तथा याम्यं यवच्छुक्लचतुर्दशीम्।
13. द्वितीयां प?चमीमुख्यास्तृतीया च कनिष्ठिका।।
14. सप्तमीं दशमी चैव द्वादश्येकादशी तथा।
15. त्रयोदशी प?चदशीतिथयः स्युः शुभावहाः।। वास्तुसौख्यम् 400-402
16. समराङ्गणसूत्रधार भवन निवेश 20/11-12
17. नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीयपाद, श्लोक 618
18. मत्स्यपुराण 254/28-30
19. वृहत्संहिता 52/26-27
20. वृहत्संहिता 53/76
21. नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीयपाद, श्लोक 590 से 599 पर्यन्त।
22. वास्तुसारमण्डनम् 4/3
23. सुदारु चन्दन शमी शिंशिपाः खदिरस्तथा।
24. शाला शालविस्तृताश्च प्रशस्ताः सर्वजातिषु।।
25. एकजात्या द्विजात्या वा त्रिजात्या वा महीरूहाः।। विश्वकर्मप्रकाश 4/11-14